International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
Volume-1, Issue-7 (December 2014) ISSN: (2349-4085)

# कबीर के काव्य में लोकमंगल

**डॉ. संतोष कौल काक**
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष - हिंदी विभाग
बी. एम. रुइया गर्ल्स कॉलेज, मुम्बई।

' लोक ' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में ' जन ' के समानार्थी के रूप में , महाभारत में ' जनसमुदाय ' गीता में ' संसार या सृष्टि ' और हिंदी साहित्य - कोश में ' संसार ‘ एवं जनसमान्य ' के अर्थ में हुआ है | आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ' लोक ' शब्द को नगर एवं ग्रामों में फैली उस समूची जनता का वाचक माना है , जिसके वास्तविक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं । इस प्रकार लोक शब्द सामान्यतः ' जनसामान्य ' क़े रूप में प्रयुक्त हुआ है । इसी तरह ' मंगल ’ शब्द का प्रयोग शुभ कल्याण या कल्याणकारी के अर्थ में हुआ है तो ‘ लोकमंगल ‘ का अर्थ हुआ वह जिसमें जन सामान्य के शुभ अथवा कल्याण की भावना निहित हो ।

ऋषि – मुनि और महापुरुष आदि समय - समय पर पीड़ित मानवों के सहायतार्थ इसी ' लोकमंगल ' की स्थापना के प्रयास में अधर्म एवं अनाचारी तत्वों का विनाश कर , सभी जीवों में समता , दया , सौहार्द्र जगाने का प्रयास करते हैं । समाज - निर्माण में साहित्यकार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है । दूसरों के लाभ को ध्यान में रखकर , व्यक्तिगत स्वार्थ - भावना से ऊपर उठकर , लोककल्याण को लक्ष्य के रूप में लेकर चलनेवाला साहित्य लोकमंगल का साहित्य कहा जा सकता है । प्राचीन काल से ही अनेक कवि अपने साहित्य में इस भावना को महत्व देते रहे हैं ।

साहित्य की अन्य धाराओं की अपेक्षा संत - साहित्य में लोकमंगल की भावना अधिक है । तत्कालीन परिस्थितियों में लोक - जीवन की दारुण स्थिति ने संतों को इस ऒर प्रवृत किया । संतों ने तत्कालीन समाज की सड़ी-गली , जर्जर हो चुकी धार्मिक , सामाजिक , राजनैतिक समस्याओं का अपने गंभीर अनुभवों से निचोड़ निकलकर , तर्क सम्मत समाधान प्रस्तुत करते हुए जनता को दृष्टि प्रदान करने का प्रयास किया ।

मध्यकालीन समाज में आचार प्रधान बौद्ध धर्म , बाहयाडम्बर से युक्त हिन्दू - मुस्लिम धर्म के कारण जनमानस आचार – विचारों के मायाजाल में फँसकर विद्वेष एवं असमानता के मार्ग पर चल पड़ा था | चारों तरफ अन्याय , अत्याचार , शोषण , उत्पीड़न के साम्राज्य में मध्य एवं निम्न वर्ग को शासकों , धर्म के ठेकेदारों से त्रस्त होते देखकर संत कबीर भी विचलित हुए | जनता की विवशता , असहायता को देखकर वे जनहित की कामना से स्थितियों की जड़ पर प्रहार करते हुए , समस्याओं का सुधारवादी दृष्टिकोण से समाधान प्रस्तुत करने लगे । नैतिक बल ,

चारित्रिक दृढता , शुद्ध आचरण एवं मानवता की शक्ति के बारे में बताना ही इनके ' लोकमंगल ' का मूल था। इसके लिए उन्होंने प्रेम , आत्मीयता , सद्गुणों ,सत्कार्यों , सत्संगति , पवित्रता आदि का महत्व दिखाकर , समाज को संकुचित परिधि से बाहर निकलकर , समानता एवं मानवता की व्यापक दृष्टि प्रदान की | इस प्रयास में झूठ को साबित करने के लिए उन्हें अनेकों बार गरल - पान करना पड़ा । लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत कबीर में लोक कल्याण का भाव उनकी रचनाओं के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त हुआ है |

**अहिंसा**

बौद्ध एवं हिन्दू धर्म का मूल मन्त्र अहिंसा लोक मंगल की भावना का आधार है | कबीर ने भी इस अहिंसा को तपस्या और परम धर्म मानकर , उसे अपने जीवन - दर्शन का आधार बनाकर उसका प्रचार - प्रसार किया । मांस - मदिरा को उन्होंने तामसिक प्रवृति वाला भोजन माना | स्वच्छ एवं सात्विक भोजन न करने वालों के मन में सात्विकता नहीं आती । मुस्लिम पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा -

दिनभर रोजा धरत हैं , रात हनत हैं गाय ।
यह तो खून यह बंदगी , क्योंकर खुसी खुदाय ||

समस्त प्राणियों में ब्रह्म का निवास मानने वाले कबीरने शाक्तों में प्रचलित पशु - बलि व नर - बलि की आलोचना की | ऐसे वैष्णवों से कबीर को चांडाल अधिक प्रिय लगते हैं । उन्होंने जीवों की हत्या ही नहीं अपितु वनस्पतियों को क्षति पहुँचाने या कटु वाणी के प्रयोग को भी हिंसा ही माना -

घट-घट में वही सांई रमता ,
कटुक वचन मत बोल रे ।

उनकी दृष्टि में ब्रह्म की व्यापकता मन - वाणी एवं समस्त कार्य जगत तक थी . अतः उस तक पहुँचने या उसे पाने के लिए आवश्यक था सभी जीवों के प्रति दयाभाव | यदि मानव इस बात को समझ ले , तभी वह दूसरे के प्रति दुर्वचन , कटुता , ईर्ष्या , द्वेष आदि से उबरकर व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन परिष्कृत कर सकता हैं । प्राणि मात्र के लिए श्रेयष्कर यही मार्ग उन्होंने बताया ।

**समता एवं मैत्री का प्रसार**

समता की भावना ' लोकमगल ' का महत्वपूर्ण पोषक तत्व है । तत्कालीन समाज , धर्म , जाति , चिंतन , वर्ग , वर्ण एवं आर्थिक असमानता की पराकाष्ठा पर पहुँचकर जर्जर हो चुका था । पंडित - मुल्ला , संभ्रांत एवं सम्पन्न व्यक्ति निम्न कार्य किये जाने पर भी पूज्य थे । अस्त - व्यस्त समाज में संपन्न व शक्तिशाली लोगों का साम्राज्य था | ऐसे भेदभाव से ग्रस्त समाज में

उन्होंने भाईचारे की स्थापना के लिए मुक्त हृदय से उस समता एवं अभेद दृष्टि का प्रचार - प्रसार किया जो विश्वबंधुत्व की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है ।

छुआ -छूत के भेदभाव को माननेवाले पंडितो के समक्ष उसकी व्यर्थता प्रमाणित करते हुए उन्होंने कहा , ' जिसे तुम बहुत सोच - विचार कर ग्रहण करते हो उस मिट्टी में सम्पूर्ण सृष्टि समाई हुई है | जिस मिट्टी में पीर – पैगम्बर गड़कर मिट्टी हो गए हैं , उससे निकले जल को ग्रहण करने में इतना सोचना - विचारना तुम्हारे मष्तिस्क का भ्रम है । ' मुसलमानों में भी शिया -सुन्नी , ऊँच - नीच , जात - पात के भेदभावों के रूप में छिपे खोखले अहंकारों पर उन्होंने प्रहार किया ।

जो तू बाभन बाभनी जाया , आन बाट होई क्यूँ नहीं आया |
जो तू तुरुक तुरुकनि जाया ,अंदर खतना क्यूँ न कराया ||
अरे ! इन दोऊन राह न पाई|
हिन्दू की हिंदुवाई देखी, तुरकन की तुरकाई ||

राम - रहीम , कृष्ण – करीम के भेद को पाटने के लिए उन्होंने इनकी अनेक नामोंवाले स्वामी के रूप में कल्पना कर सभी को सहिष्णु , उदारचित्त बनाने का कार्य किया । हिन्दू -मुस्लिम एकता उस समय की सबसे बड़ी माँग थी । सिकंदर लोदी द्वारा भयंकर दंड दिए जाने पर भी उन्होंने विचलित हुए बिना आराध्य के नाम पर समाज में फैले मतभेद एवं विद्वेष मिटाने के प्रयास किये । हिन्दू - मुस्लिम या वेद - कुरान में अलगाव के पोषक पंडितों - मुल्लाओं के विषय में उन्होंने कहा -

वेद किताब पढ़े वै क़ुतुबा , वे मौलाना वे पाँडे |
बेगरि - बेगरि नाम धराये , एक मटिया के भांड़े ||

विभिन्न सामाजिक - धार्मिक कुरीतियों से ग्रस्त मध्यवर्गीय समाज बारम्बार होने वाले आक्रमणों युद्धों से आर्थिक रूप से भी डांवाडोल हो चुका था । खेती - बारी , व्यापार का विकास भी अवरुद्ध - सा हो चुका था । धनवानों की तृष्णा के साथ - साथ गरीबों का शोषण भी बढ़ने लगा । इस आर्थिक असमानता को देख उन्होंने धन की निंदा की । उसके अनावश्यक संचय को महत्वहीन बताया । वे मानते थे कि उतना ही धन चाहिए जिससे परिवार का गुज़ारा हो सके और अतिथि भी भूखा न जाये | धन के लिए दूसरों को ठगने में कोई सुख नहीं ।

कबीरा आप ठगाइये ,और न ठगिये कोय ।
आप ठगे सुख उपजे , और ठगे दुःख होय ||

अर्थलिप्सा विकारों को भी जन्म देती है . और इन विकारों के कारण मनुष्य माया – मोह में भ्रमित होकर इन्द्रियों का दास तो हो ही जाता है , फिर यह संपत्ति अंत में न किसी काम आती है और न ही साथ जाती है |

कबीर सो धन संचिए , जो आगाँ कौ होय |

मूंड चढ़ाये पोटली , ले जात न देख्यौ कोय ||

कभी शांत न होनेवाली धन - लिप्सा अनर्थो की जड़ है और यह सद्भावना का विनाश भी करती है । अतः उसके प्रति उपेक्षा बरत कर थोड़े में ही संतुष्ट रहने की सलाह उन्होंने दी है । अमीरी - गरीबी के बीच बढ़ती खाई को पाटने के लिए विन्रम एवं मैत्रीपूर्ण व्यवहार आवश्यक हैं । समर्पण और विनम्रता पूर्ण यही व्यवहार ब्रह्म तक पहुँचने में भी सहायक होता है | अतः अपने और सबके उत्कर्ष के लिए वे स्वयं भी ' राम का मुतिया ' , ' पथ की धूल ' या ' मिट्टी ' बन जाने में गौरव का अनुभव करते हैं । उन्होंने कहा कि पूर्णतः सहिष्णु बन जाने जैसा दुष्कर कार्य महान लोग ही कर सकते हैं –

खुंदन तो धरती सहै , बाढ़ सहै बनराई |
कुसबद तो हरिजन सहै , दूजे सह्या न जाई ||

**प्रेम एवं करुणा**

लोकमंगल को साधने में प्राणि मात्र की रक्षा के लिए करुणा एवं प्रेम निःसंदेह महत्वपूर्ण है । कबीर ने इस प्रेम एवं करुणा को जीवन की उच्चतम एवं उदात्त अनुभूति मानकर उसके सहारे पथभ्रष्ट समाज को सही मार्ग दिखाया । उन्होंने बताया कि प्रेम एवं करुणा तो धैर्य , सहयोग , त्याग जैसी शक्तियों से युक्त वह भाव हैं , जिससे मानव ही नहीं अपितु जीव –जन्तुओं एवं जड़ - जंगम को भी शीतलता मिलत्ती है।

कबीर ने पोथी ज्ञान से प्रेमजन्य अनुभूति को महत्वपूर्ण मानकर बताया कि प्रेम की उपस्थिती से ही अहं भाव को भूलकर बैर भाव को समाप्त किया जा सकता है । सच्चे हृदय से इश्वर से प्रेम करने पर तो साधना सम्बन्धी विधि निषेधगत शास्त्रीय एवं लौकिक सिद्धांतों की बेड़ियाँ भी टूट जाती हैं -

जहाँ प्रेम तहाँ नेम नहिं , तहाँ न बुधि ब्यौहार |
प्रेम मगन जब मन भया , कौन गिने तिथि बार ||

सबमें यह भाव होता है और जब यह उभरता है तो संपूर्ण कार्य - कलाप प्रेममय हो जाते हैं -

प्रेम प्रेम सब कोई कहै , प्रेम न चीन्है कोय |
आठ पहर भीना रहै , प्रेम कहावै सोय ||

ममता एवं नेह की भावना के ईंट - गारे से ही मानवता के कल्याण का भव्य महल बनाने का उन्होंने प्रयास किया ।

**जीवन की नश्वरता एवं मोहमाया का त्याग**

संकुचित , दूषित , घृणित , कृत्रिमता के नर्क में डूबते हुए समाज को अपने विचारों एवं सिद्धांतों से जीवन की क्षणभगुंरता का अहसास कराकर जीवन - मुक्ति का सही मार्ग दिखाने में कबीर की भूमिका महत्वपूर्ण है । असीमित विचार - प्रवणता के धनी कबीर ने मोहमाया अहंकार एवं

छल कपट में फँसे सामान्य जन को चेताया कि यह शरीर पानी के बुद्बुदे के समान है | यह काया मिट्टी से उपजकर मिट्टी में ही मिल जाती है। यह शरीर पानी की बून्द पड़ते ही बालू की तरह ढह सकता है। सब कुछ यहीं छूट जायेगा | अतः नश्वर वस्तुओं में मोह व आसक्ति व्यर्थ है। सृष्टि की समस्त वस्तुओं की नश्वरता को जानकर भी जो अज्ञानी बने रहंते हैं, उनका जीवन मृत के सामान है | कीचड़ में रहनेवाले कमल की तरह अलिप्त रहना चाहिए। दुर्लभ मानव जन्म को मोह माया में गँवा देना उचित नहीं -

मनिषा जन्म दुर्लभ अहै , होय न बारम्बार।
तरुवर से पत्ता झरै , बहुरि न लागै डार ||

हर धर्म जाति के वयक्ति को एक न एक दिन इस संसार को त्यागना ही है। जो रामनाम का सहारा लेते हैं , वे मरकर भी अमर हो जाते हैं -

वैद मुवा , रोगी मुवा , मुवा सकल संसार।
एक कबीरा ना मुवा , जिनके राम अधार ||

बड़े से बड़े पापी को तारनेवाले नाम - जप की महिमा उन्होंने बताई | बिना नाम के मूल रहस्य को जाने राम नाम रटना कोई अर्थ नहीं रखता। सतगुरु की सहायता से इसका मर्म समझा जा सकता है ।

इस आधार को पाने के लिए जो साधना करता है वह जीते जी अमर हो जाता है। इसके लिए उन्होंने साहस ( सीस उतारे भुई धरै ) और समभाव को आवश्यक बताया। शारीरिक मोह और तज्जनित स्वार्थ के रहते उच्च मानवीय मूल्यों एवं परोपकार के अभाव में लोकमंगल संभव नहीं | अतः इस दुर्लभ मानव – जन्म को परोपकार , दया , क्षमा के माध्यम से जन सेवा करके ही ईश्वर भक्ति को पाने की बात उन्होंने बताई | उन्होंने लोगो को जीवन के उज्जवल भावों को आच्छादित करनेवाली संकुचित वृत्तियों से दूर रहकर उदारवादी बनने के लिए समझाया। अनेक कठिनाईयों से जूझते हुए उत्साही , निर्भय कबीर के व्यकितत्व की अक्खड़ता दीवानगी एवं उनकी सरल प्रभावशाली वाणी ने लोकमंगल का यह संदेश जन - जन तक पहुँचाया।

**शास्त्र ज्ञान की अपेक्षा बहुश्रुति एवं प्रत्यक्ष को मान्यता :**

कबीर कुरान या वेद शास्त्रों के पठन - पाठन या उनमें निर्दिष्ट आचरणों के पालन के निंदक नहीं अपितु उनकी मर्यादाओं का आदर करते थे। परन्तु वे कोरे एकपक्षीय ज्ञान की अपेक्षा अनुभव जन्य प्रत्यक्ष ज्ञान को अधिक महत्व देते थे। अनुभव ज्ञान को वे सार्वभौमिक , सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक मानते थे क्योंकि वे सत्यान्वेषी थे |उनका सत्य कोरे वाग्जाल पर आधारित न होकर अनुभव की कसौटी पर जाँचकर लिखा गया था। कागद लेखी से अधिक उनका 'आँखिन देखी ‘ पर विश्वास था।

लिखा - लिखी की है नहीं , देखा - देखी बात।

दुलहा - दुलहिन मिल गए , फीकी पड़ी बरात ||

अपने इस ज्ञान को उन्होंने कागद लिखने की चीज़ नहीं माना -

कागद लिखै सो कागदी , की व्योहारी जीव |
आतम दृष्टि कहाँ लिखै , जित देखों तित पीव ||

उन्होंने वेद – पुराण और शास्त्र ज्ञान के अहं में चूर चरित्रहीन पंडितों के खोखलेपन की कलई खोलने की दृष्टि से पुस्तकीय व शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा शुद्ध आचरण व जीवन की वास्तविकता पर बल दिया | वे निंदक व विरोधी थे , उन वेदपाठी पंडितों एवं नमाज़ी मुल्लाओं के , जो स्वार्थवश लोगों को गुमराह कर रहे थे और जिनकी कथनी व करनी में अंतर था | उन्होंने कहा , ' वेद शास्त्रों में कही बातें झूठी नहीं हैं , झूठे तो वे हैं जिन्होंने वेदों का सही मूल्यांकन नहीं किया ।

बेद कतेब कहहु मत झूठे , झूठा जो न बिचारै ।

हिन्दू धर्म शास्त्रों की आड़ में होने वाले अनाचारों के साथ ही वे मुस्लिम धर्म ग्रंथो की आड़ में होने वाले शोषण के भी निंदक थे इस तरह शास्त्रों की गलत व्याख्या प्रस्तुत करनेवालों की अपेक्षा ये स्वानुभूति या सच्चे गुरु की सहायता लेना उचित मानते थे ।

**गुरु की महत्ता**

गुरु की सहायता के अभाव में जीवन का सही मार्ग प्राप्त करना असंभव होता है , क्योंकि वही शिष्य में सही आस्था , विश्वास और सत्कर्म का भाव जगाकर उसे शुद्ध आचरण के लिए प्रेरित कर दूर - दृष्टि प्रदान कर सकता है | साथ ही वह यह बताना नहीं भूले कि गुरु वह चुनें जो स्वयं ज्ञानी हो , वर्ना वह तो डूबेगा ही आप भी उसके साथ डूब जाएँगे | कबीर ने बताया कि गुरु के समक्ष सब छोटे होते हैं । गुरु व गोविन्द दोनों की उपस्थित में उन्होंने गोविन्द के बारे में बताने वाले गुरु के आगे शीश नवाना उचित माना । परन्तु सच्चा गुरु मिलना कठिन है , जिसे मिल जाय वह धन्य है –

कनफूँका गुरु हद्द का , बेहद का गुरु और |
बेहद का गुरु जब मिलै , लहै ठिकाना ठौर ||

**धर्म एवं सत्संग**

कबीर ने दया , प्रेम , सत्य - अहिंसा और मानवता को ही धर्म का मूल बताया | ईश्वर प्राप्ति के लिए सच्ची निष्ठा तो आवश्यक है ही , साथ ही सांसारिक सुख , ऐश्वर्य एवं अंह का त्याग भी आवश्यक है | अहं एवं प्रेम जैसे परस्पर विरोधी भावों का साथ रहना सम्भव नहीं ।

उन्होंने व्रत या रोज़े - नमाजों को वास्तविकता एवं ईश्वर से दूर ले जानेवाला बताया | उनकी दृष्टि में आत्मचिंतन ही ईश्वर से साक्षात्कार का सोपान था | उन्होंने ' मन न रंगाय , रंगाय जोगी कपड़ा ' , ' खोजी होय तो तुरतै मिलिहे , पलभर की तलास में ' कहते हुए यह समझाया कि

, पीताम्बर धारण करने या कपडे रंगने से जयादा महत्वपूर्ण है , आंतरिक रूप से प्रभु के रंग में रंग जाना । बाह्य आडम्बरों और कर्मकांडों के द्वारा उसके आदि , मध्य या अंत को जानना – समझना असंभव ही है | ‘ ना मैं मंदिर , ना मैं मस्जिद , ना काबे कैलास में ‘ कहते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि उनकी दृष्टि में परम सत्ता यानि ब्रहम , जो कि इस सृष्टि का नियंता है , वह मंदिर - मस्जिदों में नहीं , इस संसार के कण - कण में विद्यमान हैं । दुष्कर्मो से पीछा छुड़ाने वाले कल्याणमय सत्संग की श्रेष्ठता भी उन्होंने बताई | संसार के दैहिक , दैविक , भौतिक ताप से मुक्त होने में सहायक सत्संग के लिए कबीर ने वैकुण्ठ को भी ठुकराने की बात कही –

राम बुलावा भेजिया , दिया कबीरा रोय |
जो सुख साधु संग में , सो वैकुण्ठ न होय ||

सत्संग के दुर्लभ सुख को पाने के लिए कुछ क्षणिक सुखों का त्याग करना भी लाभदायी होता है -

कबीर सगत साध की , जौ की भूसी खाय।
खीर - खांड भोजन मिलै , साकट संग न जाय ||

मन को शांति पहुँचानेवाले सत्संग का जितना भी लाभ मिल जाय अच्छा ही होता है -

एक घड़ी आधी घड़ी , आधी हूँ से आध |
कबीर संगति साधु की , कटे कोटि अपराध ||

**पारिवारिक व्यवस्था**

मध्यकालीन समाज में खुशहाल आदर्श पारिवारिक व्यवस्था के समस्त सम्बन्ध औपचारिकता व अमर्यादा में बदल चुके थे | वहाँ आदर व प्रेम - भाव समाप्तप्राय होते देखकर लोकमंगल की दृष्टि से उन्होंने इस दिशा में भी प्रयास किया । पिता - पुत्र , पति - पत्नी आदि के नारकीय सम्बन्धों , पारिवारिक विघटन से जर्जर समाज का दिशा - निर्देश भी उन्होंने किया ।

परिवार को सुचारु रूप से चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाली नारी पर कठोर बंधन थे । जन्म से ही अशुभ मानीजाने वाली स्त्री को पिता , पति , पुत्र के नियंत्रण में रहकर अनेक यातनाएँ सहनी पड़तीं थीं | गुलाम - सा जीवन बिताते हुए सबसे डरना पड़ता था । भ्रष्टाचार , दुराचार व अनैतिक मूल्यों से ग्रस्त समाज में वह मानी जाती थी मात्र भोग्या और संपत्ति ।

सामाजिक मूल्यों के उच्च आदर्शों को बनाये रखने के लिए पातिव्रत्य - धर्म की महत्ता उन्होंने बतायी । उन्होंने पति - पत्नी के सम्बन्ध को शारीरिक ही नहीं आध्यात्मिक भी माना । उसे दो आत्माओं का मिलन कहा । कहीं स्वयं को राम की बहुरिया कहा । विरहावस्था में भी दृढप्रतिज्ञ रहने वाली पतिव्रता को सीपी के सामान माना | चातकी को प्रेम का आदर्श माना जो प्यासा रह जाना , इंतज़ार करना अधिक उचित मानती है , किन्तु स्वाति नक्षत्र की जल – बूँद के अलावा अपनी प्यास किसी और से नहीं बुझाती -

कबीर सींप समुन्द्र की रटे पियास –पियास |
और बूँद को ना गहै ,स्वाति बूँद की आस ||

उन्होंने चरित्रवान नारियों को पूजनीय माना , पर चरित्रहीन , कुलटा , कामिनी नारियों की निन्दा की । कुरूप ही सही परतु चरित्रवान नारियों पर वे सुंदरता एवं वासना का व्यापार करनेवाली अनिंद्य सुंदरियों को न्योछावर कर उन्हें सम्मान देते है -

पतिबरता मैली भली ,काली कुचिल कुरूप |
पतिबरता के रूप पर , वारौं कोटि कुरूप ||

**बाधक तत्व**

हर काल एवं समाज में कुछ ऐसे अराजक , समाजद्रोही , विघटनकारी तत्व होते हैं , जिनसे लोकमंगल की रक्षा नहीं होती | इन बाधक तत्वों के विनाश के बिना सही समाज - रचना व लोकमंगल की भावना का ध्येय पूरा करना असंभव था । कबीर का सामयिक समाज अंधविश्वासों , जात - पात सबंधी संकीर्ण विचारों , आडंबरों , कर्म - कांडों एवं व्यकितवादिता के दोषों से ग्रस्त था | कबीर ने इनकी आलोचना करते हुए अपने तर्क - बल से वास्तविकता को सबके समक्ष प्रस्तुत किया ।

**अंधविश्वास**

लोकमंगल के लिए कबीर ने अंधविश्वास जैसी दूषित भावनाओं के साम्राज्य का खात्मा आवश्यक समझा । बिना विचार किये पुरातन मान्यताओं को अपनाकर दूसरों से भी ऐसी ही अपेक्षाएँ रखी जाती थीं । कबीर ने मज़ारों , पूजा - ओझा पर रोष जताते हुए अंधविश्वासों पर तीखे प्रहार किये । उन्होंने मंदिर - मस्जिद की नींव को ही अंधविश्वासों की नींव मानकर हिन्दू मुस्लिमों को इस भ्रम से बचाने का प्रयास किया ।

अनेक विधियों , खोखले कर्म – कांडों , मूर्ति - पूजा आदि को अन्धविश्वास मानते हुए उन्होंने घोषणा की कि जिस मूर्ति की पूजा क़े लिए फूल पत्तियाँ तोड़ी जा रही हैं , वह स्वयं तो निर्जीव है और ऐसी निर्जीव मूर्तियों के लिए उन फूल पत्तियों को तोडना कि जिनमें प्राण हैं , उचित नहीं -

पाती तौरे मालिनी , पाती- पाती जीउ |
जिस पाहन को पाती तौरे ,सो पाहनु निरजीउ ||

जब वो कहते हैं ‘ ना मैं मंदिर , ना मैं मस्जिद , ना काबे कैलास में ‘ तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनकी दृष्टि में ब्रह्म तीर्थ ,व्रतादि में नहीं बल्कि जगत की प्रत्येक वस्तु में है ,सत्य में है |

**मिथ्याचार एवं आडम्बर**

पंडितों एवं मुल्लाओं ने अपने – अपने धर्म क़े महत्वपूर्ण सात्विक आचारों को विनष्ट कर , भोली - भाली जनता को भ्रमजाल में उलझाकर , मिथ्याचारों एवं आडम्बरो को ही धर्म का रूप दे

दिया था। इन कर्मकांडो क़े भ्रमजाल में फँसकर राजा - प्रजा सभी दिग्भ्रमित हो चुके थे। अतः कबीर ने इन आडम्बरों एवं मिथ्याचारों के जनक पंडितों – काज़ियों एवं उन पर विशवास करनेवाली जनता को भी ‘ पंडित मुल्ला जो लिख दिया। छाड़ि चले हम कछु न लिया। ‘ कहकर लताड़ लगायी | पंडितो को तो उन्होंने झूठा ही कहा -

पंडित वाद बदौं सो झूठा,
राम क़े कहे जगत गति पावै , खांड कहै मुख मीठा।

उन्होंने परंपरागत पूजा - पाठ एवं धर्म को नितांत भ्रमाच्छादित माना |इसके अगुआ मुल्ला–पंडितों को माया का शिकार माना |उन्होंने ग्रंथो , सम्प्रदायों क़े प्रति भी उपेक्षा-भाव दिखाया।-

पाहन पूजे हरि मिलैं , तो मैं पूजौं पहार |
ताते ये चाकी भली , पीसि खाय संसार ||

उन्होंने मूर्तिपूजा , बलि, रोज़ा - नमाज , तीर्थटनों के ढकोसले में फंसे समाज को रूढ़ी – परम्पराओं से मुक्त स्वस्थ जीवन का , भक्ति का मार्ग दिखाया।

**व्यक्तिगत आचरण एवं षड्विकार :**

कबीर ने मानव क़े व्यक्तिगत उत्थान में बाधक आचरण को छोड़ने की सलाह दी क्योकि व्यक्तिगत शुद्ध आचार-विचार व सात्विक जीवन द्वारा ही पारिवारिक , सामाजिक व राष्ट्रीय उत्थान की नींव डाली जा सकती है | अतः उन्होंने निराशा क़े दलदल में फँसे दिग्भ्रमित समाज को शुद्ध व्यक्तिगत आचरण अपना कर आदर्श समाज के निर्माण की प्रेरणा दी।

धृति , क्षमा, दया , अस्तेय , शौच , इन्द्रिय - निग्रह , धी , विद्या , सत्य , और अक्रोध इन दस आचारो की महत्ता बता कर उनके विकास पर बल दिया। उन्होंने **धैर्य व संतोष** को इन दस आचारो में सबसे महत्वपूर्ण बताते हुए व्यक्ति क़े विकास में इनकी महत्ता रेखांकित की -

धीरे धीरे रे मना , धीरे सब कुछ होय |
माली सींचे सौ घड़ा ,ऋतु आये फल होय ||
कबीरा धीरज क़े धरे , हाथी मन भर खाय |
टूक एक के कारने ,स्वान घरै घर जाय ||

**क्षमा** हृदय की विशालता व महानता की द्योतक है , पर भ्रष्ट लोगों को क्षमा करना कायरता व निर्बलता है। उन्होंने दया की महत्ता स्वीकार की | मर्यादा का परित्याग करते हुए किसी वस्तु का अधिकांश संग्रह न करना **अस्तेय** है | पूँजी - संचय की उन्होंने निंदा की -

उदर समाता अन्न लै , तनहि समाता चीर |
अधिकहिं संग्रह ना करै , ताका नाम फकीर ||

**शुद्धता ( शौच )** दो प्रकार की होती है - मन व शरीर की | मन स्वच्छंद , निष्कपट एवं विशाल हो , शुद्ध हो यह ज्यादा महत्वपूर्ण है। उन्होंने बताया किदैनिक जीवन में ज्ञानेन्द्रियों व

बुराइयों के मूल यानि मन पर नियंत्रण रखना यानि ' **इन्द्रिय - निग्रह** ' आवश्यक है इसके बिना सिद्धि पाना संभव नहीं । ' **धी:** ' अर्थात वेदशात्रादि का तत्त्व एवं सार उन्होंने ग्रहण किया | वे वेदादि क़े विरोधी नहीं थे , अपितु उसे जटिल बनानेवाले पंडितों क़े विरोधी थे | ऐसे पंडितों की उपमा उन्होंने चंदन ढ़ोनेवाले ऐसे गधों से दी है , जो भार तो ढ़ोते हैं पर सुगंध से वंचित रहते हैं ।आत्मचिंतन ,मंथन व अनुभूतिजन्य **विद्या या आत्मज्ञान** ही उनकी दृष्टि में महत्वपूर्ण थी | **सत्य** और **अक्रोध** क़े बिना व्यक्तित्व में ऊँचाई का आना संभव नहीं | सत्य की महत्ता क़े विषय में उन्होंने बताया कि सच्चे व्यक्ति को न काल का भय रहता है और न ही शाप का । आंतरिक सत्यजनित आचार-विचार की शुद्धता उसका भूषण व शक्ति बन उसे अत्यधिक शक्तिशाली बना देते हैं –

लेखा देना सहज हैं ,जो दिल साँचा होय |
साईं क़े दरबार में ,पला न पकरै कोय ||

अनुभव की कसौटी पर कसने पर जो भी आचार सम्बन्धी मान्यताएँ उन्हें जंचीं , उसे उन्होंने सरल व ग्राह्य बनाकर प्रस्तुत किया और जो कुछ भी हानिकारक है , उसे त्याज्य बताया । व्यर्थ की बातो में उलझने - उलझाने की बजाय ' सार - सार को गहि रहें , थोथा देय उड़ाय ‘ के सिद्धांतों को महत्व देते हुए , उन्होंने उसके विषय में ‘ सूप-सा स्वभाव ‘ रखकर शिक्षा ग्रहण करने का उपदेश दिया | इस तरह उन्होंने ‘ सार संग्रहै सूप ज्यौं , त्यागै फटक असार ' का आचरण अपनाने की बात कही ।

**आत्मशुद्धि** का अर्थ हैं आतंरिक शुद्धता | इसके लिए क्षमा व दया का भाव होना चाहिए क्योंकि यही धर्म एवं आचरण की प्रथम कसौटी है -

जहाँ दया तहँ धर्म है ,जहाँ लोभ तहँ पाप |
जहाँ क्रोध तहँ काल है ,जहाँ छिमा तहँ आप ||

उन्होंने समझाया कि मन की शुद्धि से आत्मा शुद्ध होती हैं | साधना एवं सदाचरण क़े मार्ग में बाधक चंचल मन को वश में करने से सब कुछ संभव हो सकता है | आवश्यकता इस बात की भी है , यदि आप अपना मार्ग सही चुनते हो तो आशंका की जगह स्वयं पर आत्मविश्वास भी बनाए रखिये -

मन के हारे हार है ,मन के जीते जीत |
कह कबीर पीव पाइए ,मन की ही परतीत ||

मानव को पतनोन्मुख करने वाले इन विकारों की बुराइयों को अपने ज्ञान के प्रकाश में उजागर कर उन्होंने इनकी निंदा की | मानव की बुद्धि भ्रष्ट करने वाले जीवन को विषाक्त एवं दुखद बनानेवाले षड्विकारों के रहते ' लोक मंगल ' की स्थापना संभव नहीं हो सकती | अतः कबीर ने काम , क्रोध , मोह , मद ,लोभ , मत्सर की भर्त्सना कर उन्हें त्यागने क़े लिए उत्प्रेरित किया |

उन्होंने माना कि कामी , क्रोधी ,लोभी , मनुष्यों द्वारा ईश्वर - भक्ति संभव नहीं , क्योंकि भक्ति का अधिकारी वही है जो जाति , वर्ण , कुल आदि को त्यागकर समदृष्टा एवं उदारचरित हो जाये । उन्होंने सबसे शक्तिशाली व प्रबल यानि काम - भावना क़े वशीभूत हो जानेवाले का विनाश अवश्यंभावी माना -

नर - नारी सब नरक हैं , जब लग देह सकाम |
कहैं कबीर ते राम के , जे सुमिरै निहकाम ||

आत्मशुद्धि में बाधक , किये कराये पर पानी फेरने वाले , हित-अहित , अच्छे बुरे का ज्ञान मिटानेवाले क्रोध को अशांति का जनक मान उसे त्यागने पर उन्होंने बल दिया क्योकि क्रोधी हमेशा अस्थिर विचारों एवं बेचैनी क़े कारण चिंता , ग्लानि , पश्चाताप एवं विषाद में ही डूबा रह कर साधक नहीं बन सकता ।

कोटि करम लागे रहै , एक क्रोध की लार |
किया कराया सब गया , जब आया हंकार ||
कुबुधि कमानी चढ़ी रही ,कुटिल वचन की तरल |
भरि-भरि मारै कान में , सालै सकल शरीर ||

मानव क़े शत्रु , दुखों क़े मूल यानि मोह का शरीर में निवास होने पर जीवन की असारता एवं अस्थिरता बढ़ जाती है -

सलिल मोह की धार में , बहि गए गहिर गंभीर |
सुच्छम मछरी सुरति है , चढ़ती उलटे नीर ||

उन्होंने बताया कि मनुष्य में अनंत इच्छाओं के जनक ' लोभ ' की उत्पत्ति से भी मन अशांत हो जाता है -

जब मन लागा लोभ से , गया विषय में सोय |
कहैं कबीर विचारि कै ,कस भक्ति धन होय ||

अहंकार का त्याग भी उन्होंने आवश्यक माना । स्नेह व सहानुभूति का नाश कर दूसरों के अनिष्ट की ओर प्रवृत्त करनेवाला ' मत्सर ' का भाव ईर्ष्या जगाता है । इससे दूर रहना ही अभीष्ट है । इन षटविकारो से मूल्यों और नैतिकता में आई गिरावट , असमानता , शोषण , अन्याय , उत्पीड़न को दूर कर जनसामन्य के उद्धार के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहे ।

इस तरह कबीर ने अपनी विचार-प्रवणता , सारसंग्रही वृत्ति एवं क्रांतिकारी व्यक्तित्व से अन्याय , शोषण , आदि से मुक्त और मानवता से युक्त सामुदायिक जीवन व सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने का प्रयास किया ।

' जियो ओर जीने दो ' का प्रेम मूलक जीवनदर्शन प्रस्तुत कर ' वसुधैव कुटुंबकम ' का आदर्श उन्होंने सबके सामने प्रस्तुत किया । उन्होंने ' लोक मंगल ' को साध्य करने क़े लिए उसके

विघटनकारी तत्वों , सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों को समूल उखाड़ने के लिए उनसे दूर रह सद्भावना व मैत्रीभाव को अपनाने पर बल दिया । उन्होंने घट - घटवासी सार्वभौम ब्रह्म की कल्पना प्रस्तुत कर समाज को विभिन्न भेदभावों , कुरीतियों , संकीर्णताओं के मकड़जाल से निकालकर , उदार हृदय एवं सहिष्णु बनाने का प्रयास किया ।

अपनी सरलता , सादगी , ईमानदारी , स्पष्टवादिता एवं निश्छल सहजता से लोगों को प्रभावित कर उच्चतम जीवन आचरण की प्रेरणा दी । कबीर द्वारा जनसमान्य को सचेत करने के लिए लोकमंगल की दिशा में किया गया यह कार्य भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व है । उनकी बातें आज भी प्रासंगिक हैं और आनेवाले युगों में भी मानव - जीवन एवं जगत के लिए चिरस्थायी प्रेरणास्तोत्र बनी रहेंगी |

सन्दर्भ - सूची

1 हिंदी की प्रगतिशील कविता , डॉ. रंजीत , पृ . सं . 262.
2 नयी कविता : नये कवि , विश्वंभर मानव , पृ . सं . 141
3 नए प्रतिनिधि कवि , हरिचरण शर्मा , पृ . सं . 36 .
4 हंस , अप्रैल 48, पृ . सं .525 .
**5. युगधारा , नागार्जुन ,** पृ . सं . **13-14 .**
**6. प्रगतिवादी काव्य , उमेशचन्द्र मिश्र ,** पृ . सं . **144 .**
**7. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ , डॉ. नामवर सिंह ,** पृ . सं . **105 .**